संघवी धरणा और श्री धरणविहार—
राणकपुर तीर्थ का इतिहास

'अरविन्द' बी. ए.

ॐ श्री आदिनाथाय नमः

परमार्हत श्रेष्ठिसंघवी धरणा और श्री धरणविहार-राणकपुरतीर्थ का

इतिहास

(सचित्र)

लेखक

दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी. ए.

धामणिया (मेवाड़)

मंत्री

शाह ताराचन्द मेघराजजी, पावानिवासी

श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति

स्टे. राणी (राजस्थान)

प्रकाशक

श्री प्राग्वाट-संघ-सभा

सुमेरपुर (राजस्थान)

:: प्राप्तिस्थान ::
मंत्री, श्री प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति
स्टे० राणी (राजस्थान)

प्रथम संस्करण
वि० सं० २००६ प्रतियाँ २५०० वी० सं० २४७६
मूल्य- आठ आने

मुद्रक
श्री जालमसिंह मेड़तवाल के प्रबन्ध
श्री गुरुकुल प्रिन्टिंग प्रेस,
ब्यावर (अजमेर-राज्य)

निवेदन

इस जगविश्रुत श्री राणकपुरतीर्थ का जीर्णोद्धार अहमदाबाद (गुजरात) में संस्थापित श्री आणंदजी कल्याणजी की पीढ़ी ने लगभग रु० ७००००० सप्त लक्ष का सद्व्यय करके करवाया है तथा तीर्थ के चतुर्दिक् लगभग रु० ५८०००) अट्ठावन सहस्र व्यय करके सुदृढ़ परिकोष्ठ भी बनवाया है। इस तीर्थ की व्यवस्था भी यही पीढ़ी करती है। इस पीढ़ी की सुव्यवस्था से इस महान् तीर्थ की अच्छी सेवा हुई है। इसी पीढ़ी की ओर से तीर्थ की पुनः प्रतिष्ठा वि० सं० २००९ फाल्गुण शुक्ला पंचमी को कई लक्ष रुपयों का व्यय करके करवाई जा रही है। इस प्रतिष्ठामहोत्सव में सुदूर एवं निकट के प्रांतों के अगणित ग्राम, नगरों से कई सहस्रों की संख्या में दर्शकों के आने की आशा है। तीर्थ-दर्शन का आनन्द, प्रतिष्ठोत्सव का आनन्द-अगर इन दोनों आनन्द की सरिताओं में इस तीर्थ के और इस तीर्थ के निर्माता के इतिहास के वाचन के आनन्द की सरिता भी संमिलित हो जाती है तो यह आनन्द का त्रिवेणीसंगम सचमुच पूर्ण आनंद-दायी सिद्ध होगा।

दर्शकों को इस अपूर्व पूर्णानन्द की प्राप्ति हो, यही विचार कर इस महान् तीर्थ और इसके निर्माता प्राग्वाटकुलावतंस श्रेष्ठि संघवी धरणाशाह का इतिहास इस शुभावसर पर पूर्व प्रकाशित करते हुये अपार आनन्द हो रहा हैं।

आशा है पाठकगण समिति के श्रम का लाभ उठाकर उसके श्रम का मूल्य करेंगे।

—मंत्री

प्रकाशित होते हुये
प्राग्वाट-इतिहास से उद्धृत

प्रस्तुत पुस्तिका केवल संघवी धरणाशाह का ही इतिहास है जो प्रकाशित होते हुये प्राग्वाट-इतिहास से उद्धृत किया गया है। अतः इसमें सं० धरणाशाह का वर्णन, उसके द्वारा विनिर्मित श्री त्रैलोक्यदीपक-नलिनीगुल्मविमान-धरणविहार नामक श्री चतुर्मुखआदिनाथजिनालय--राणकपुरतीर्थ तथा उसके प्रशस्त अन्य पुण्यकार्यों का यथाप्राप्त उल्लेख और उसके वंश का परिचय दिया गया है।

वर्तमान् में इस तीर्थक्षेत्र में दो अन्य जैनदेवालय भी बने हुए हैं, वे भी प्राचीन ही हैं तथा अन्य प्राग्वाटज्ञातीय, उपकेशज्ञातीय, श्रीमालज्ञातीय अनेक सद्गृहस्थबंधुओं ने इस तीर्थ में भिन्न २ समयों पर पुष्कल द्रव्य व्यय करके बड़े २ पुण्यकार्य, निर्माण-कार्यादि करवाये हैं; परन्तु इस पुस्तक के उद्देश्य से बाहर होने के कारण उनके विषय में यहाँ कुछ भी नहीं लिखा जा सका है। पाठक इस सकारणता के लिये क्षमा करें।

श्री धरणविहार-राणकपुरतीर्थ का शिल्प-कला की दृष्टि से वर्णन लिखने के लिये तथा प्रतिमादि के लेख लेने के लिये मैं तीर्थ में ई० सन् ता० ३०-५-५० से ३-६-५० तक जब ठहरा था, पीढ़ी के मुनीम श्री हरगोविंद हेमचन्द भाई ने तत्परतापूर्ण सुविधायें दी थीं तथा सराहनीय सहयोग-भाव प्रदर्शित किया था। वे अपनी इस सहृदयता के लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

—लेखक

नलिनीगुल्मविमान के सदृश श्री त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार—

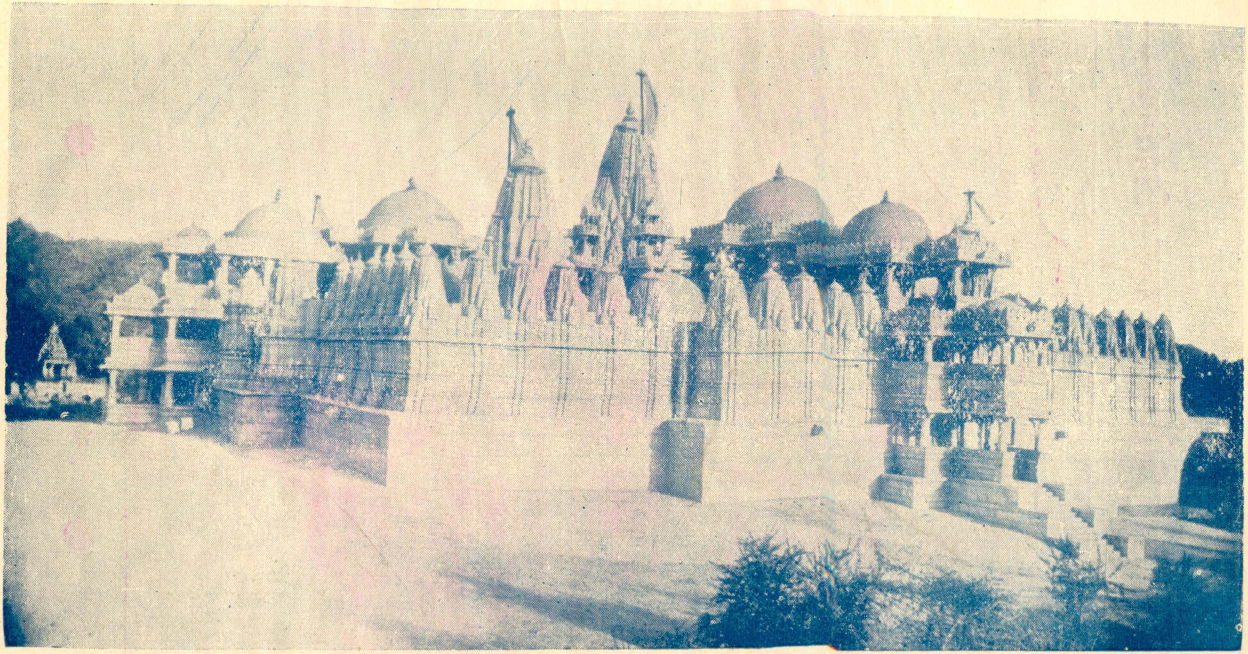

श्री आदिनाथ चतुर्मुख जिनालय

श्री धरणविहार जिनालय का प्रमुख पश्चिमाभिमुख—

● त्रि मं जि ला सिं ह द्वा र ●

॥ श्री आदिनाथाय नमः ॥

प्राग्वाटवंशावतंस
श्रेष्ठि सं० रत्ना एवं श्रेष्ठि सं० धरणा
और श्री धरणविहार-राणकपुरतीर्थ
का
इतिहास

सं० सांगण और उसका पुत्र कुरपाल

वि० शताब्दी पन्द्रहवीं के प्रारम्भ में नांदिया (नंदीपुर) नामक ग्राम में, जो सिरोही-स्टेट, राजस्थान के अन्तर्गत है सं० सांगण रहता था। सं० सांगण के कुरपाल नामक प्रसिद्ध पुत्र था। कुरपाल की स्त्री कामलदेवी थीं। कामलदेवी का

नांदिया ग्राम का नाम किसी उक्त वंशसम्बन्धी शिलालेख में नहीं मिलता है। पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् के अनेक प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध कवि, सूरि एवं मुनियों द्वारा रचे गये राणकपुरतीर्थसंबंधी स्तवनों में नांदिया ग्राम का नाम स्पष्टतया वर्णित है। जनश्रुति भी इस मत की प्रबल पुष्टि करती है।

पिंडरवाटक में श्री महावीर जिनालय के वि० सं० १४६५ के सं० धरणा के लेख में सांगा (सांगण) का पुत्र पूर्णसिंह और पूर्णसिंह की स्त्री जाल्हणदेवी और पुत्र कुरपाल लिखा है। -अ० प्र० जै० ले० सं० आबू भा० ५ ले० ३७४.

अपर नाम कर्पूरदेवी था। कामलदेवी की कुक्षी से सं० रत्ना एवं सं० धरणा (धन्ना) का जन्म हुआ। दोनों पुत्र दृढ़ जैन-धर्मी, नीतिकुशल, उदार एवं बुद्धिमान नरश्रेष्ठ थे।

सं० रत्ना और सं० धरणाशाह

सं० रत्ना बड़ा और सं० धरणाशाह छोटा था। दोनों में अत्यधिक प्रेम था। सं० रत्ना की स्त्री का नाम रत्नादेवी था। रत्नादेवी की कुक्षी से लाषा, सलषा, मना, सोना और सालिग नामक पाँच पुत्र हुये थे। सं० धरणा की स्त्री का नाम धारलदेवी था और धारलदेवी की कुक्षी से जाषा और जावड़ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। सं० रत्ना और सं० धरणा दोनों भ्राता राजमान्य और गर्भश्रीमन्त थे। सिरोही-राज्य के अति प्रतिष्ठित कुलों में से इनका कुल था। दोनों भ्राता बड़े ही धर्मिष्ठ एवं परोपकारी थे। सं० धरणा अपने बड़े भ्राता सं० रत्ना से भी अधिक उदार, सहृदय, धर्म और जिनेश्वरदेव का परमोपासक था। वह बड़ा ही सदाचारी, सत्यभाषी और मितव्ययी था। धर्म के कार्यों में, दीन-हीनों की सहायता में वह अपने द्रव्य का सदुपयोग करना कभी नहीं भूलता था। सिरोही के प्रतापी राजा सेसमल की राजसभा में इन्हीं गुणों के कारण सं० धरणा का बड़ा मान था।

प्रा० जै० ले० सं० भा० २ के ले० ३०७ में मागण छपा है। पं० लालचन्द्र भगवानदास गांधी, बड़ौदा और मैं दोनों बड़ौदा जाते समय ता० २१ दिसम्बर सन् १९५२ को श्री राणकपुरतीर्थ की यात्रा करते हुए गये थे। हमने मूल लेख जो प्रमुख देवकुलिका के बाहर एक बड़े प्रस्तर पर उत्कीर्णित है पढ़ा था। उसमें स्पष्ट शब्द में सागण उत्कीर्णित है।

दोनों भ्राताओं के पुण्यकार्य और श्री शत्रुञ्जयमहातीर्थ की संघयात्रा

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है दोनों भ्राता बड़े ही पुण्यात्मा थे। इन्होंने अजाहरी, सालेर आदि ग्रामों में नवीन जिनालय बनवाये। ये ग्राम नांदिया ग्राम के आस-पास में ही थोड़े २ अंतर पर हैं। वि० सं० १४६५ में पिंडरवाटक में और अनेक अन्य ग्रामों में भिन्न २ वर्षों में जिनालयों का जीर्णोद्धार करवाया, पदस्थापनायें, बिंबस्थापनायें करवाईं, सत्रागार (दानशाला) खुलवाये। अनेक अवसरों पर दीन, हीन, निर्धन परिवारों की अर्थ एवं वस्त्र, अन्न से सहायतायें कीं। अनेक शुभावसरों एवं धर्मपर्वों के ऊपर संघ-भक्तियाँ करके भारी कीर्ति एवं पुण्यों का उपार्जन किया। इन्हीं दिव्य गुणों के कारण सिरोही के राजा, मेदपाट के प्रतापी महाराणा इनका अत्यधिक मान करते थे।

एक वर्ष धरणा ने शत्रुञ्जयमहातीर्थ की संघयात्रा करने का विचार किया। उन दिनों यात्रा करना बड़ा कष्टसाध्य था। मार्ग में चोर, डाकुओं का भय रहता था। इसके अतिरिक्त भारत के राजा एवं बादशाहों में द्वंद्वता बराबर चलती रहती थी। और इस कारण एक राजा के राज्य में रहने वालों को दूसरे राजा अथवा बादशाह के राज्य में अथवा में से होकर जाने की स्वतन्त्रता नहीं थी। शत्रुञ्जयतीर्थ गूर्जर भूमि में है और उन दिनों गूर्जरबादशाह अहम्मदशाह था, जिसने अहमदाबाद की नींव डाल कर अहमदाबाद को ही अपनी राजधानी बनाया था। अहम्मदशाह के दरबार में सं० गुणराज नामक प्रतिष्ठित व्यक्ति का बड़ा मान था। सं० धरणा ने सं० गुणराज के साथ में, जिसने बादशाह अहम्मदशाह से फरमाण (आज्ञा) प्राप्त किया है पुष्कल द्रव्य व्यय करके] श्री

शत्रुञ्जयमहातीर्थादि की महाडंबर और दिव्य जिनालयों से विभूषित सकुशल संघयात्रा की। इस यात्रा के शुभावसर पर संघवी धरणाशाह ने, जिसकी आयु ३०-३२ वर्ष के लगभग में होगी श्री शत्रुञ्जयतीर्थ पर भगवान आदिनाथ के प्रमुख जिनालय में श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि से संघ-समारोह के समक्ष अपनी पतिव्रता स्त्री धारलदेवी के साथ में शीलव्रत पालन करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की। युवावय में समृद्ध एवं वैभवपति इस प्रकार की प्रतिज्ञा लेने वाले इतिहास के पृष्ठों में बहुत ही कम पाये गये हैं। धन्य है ऐसे महापुरुषों को, जिनके उज्ज्वल चरित्र पर ही जैनधर्म का प्रासाद आधारित है।

माण्डवगढ़ के शाहजादा गजनीखाँ को तीन लक्ष रुपयों का ऋण देना

मांडवगढ़ के बादशाह हुसंगशाह का शाहजादा गजनीखाँ अपने पिता से रुष्ट होकर मांडवगढ़ छोड़कर निकल पड़ा था और वह अपने साथियों सहित चलता हुआ आकर नांदिया ग्राम में ठहरा। यहाँ आने तक उसके पास में द्रव्य भी कम हो गया था और व्यय के लिये पैसा नहीं रहने पर वह बड़ा दुःखी हो गया था। जब उसने नांदिया में सं० धरणा की श्रीमंतपन एवं उदारता की प्रशंसा सुनी, वह सं० धरणा से मिला और उससे तीन लक्ष रुपये उधार देने की याचना की। सं० धरणा तो बड़ा उदार था ही, उसने तुरन्त शाहजादा गजनीखाँ को तीन लक्ष रुपया उधार दे दिया।

शाहजादा गजनीखाँ ने रुपया इस प्रतिज्ञा पर उधार लिया कि वह जब मांडवगढ़ का बादशाह बनेगा, सं० धरणा

का रुपया पुनः लौटा देगा। सं० धरणा के आग्रह पर शाहजादा गजनीखाँ कुछ दिनों के लिये नांदिया में ही ठहरा रहा। इन्हीं दिनों में मांडवगढ़ से कुछ यवन सामंत शाहजादा को ढूंढ़ते २ नांदिया में आ पहुँचे और उन्होंने शाहजादा को मांडवगढ़ चलने के लिये आग्रह किया। सं० धरणा ने शाहजादा गजनीखाँ को समझा बुझा कर मांडवगढ़ जाने के लिये प्रसन्न कर लिया और शाहजादा अपने साथियों सहित मांडवगढ़ अपने पिता के पास में लौट गया। बादशाह हुसंगशाह ने जब यह सुना कि सं० धरणा ने उसके पुत्र गजनीखाँ का बड़ा सत्कार किया और उसको समझा कर पुनः मांडवगढ़ जाने के लिए प्रसन्न किया वह अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ और सं० धरणा को मांडवगढ़ बुलाने का विचार करने लगा। इतने में वह अकस्मात् बीमार पड़ गया और सं० धरणा को नहीं बुला सका।

बाली पौषधशाला के कुलगुरु भट्टारक मियाचन्द्रजी के पास में वि० संवत् १६२५ में पुनर्लिखित सं० धरणाशाह के वंशजों की एक लंबी ख्यातप्रति है। उसमें सं० कुरपाल के तीन पुत्रों का होना लिखा है। सर्व से बड़ा पुत्र समर्थमल था। समर्थमल की स्त्री का नाम सुहादेवी था और सुहादेवी के सूजा नामक पुत्र हुआ था। आगे समर्थमल का वंश नहीं चला। हो सकता है सूजा बालवय में अथवा निस्सन्तान मर गया हो और राणकपुर-धरणविहार-त्रैलोक्य-दीपक मन्दिर की प्रतिष्ठा के शुभावसर तक इनमें से कोई जीवित नहीं रहा हो।

दूसरी बात सं० धरणा का अपरनाम धर्मा भी लिखा है।

तीसरी बात सं० धरणा के द्वितीया स्त्री चन्द्रादेवी नामा और थी। वह भी प्रतिष्ठोत्सव तक सम्भव है निस्सन्तान मर गई हो।

गजनीखाँ का बादशाह बनना और मांडवगढ़ में धरणाशाह को निमंत्रण तथा कारागार का दंड और चौरासी ज्ञाति के एकलक्ष सिक्के देकर छूटना और नांदिया ग्राम को लौटना

मांडवगढ़ का बादशाह हुसंगशाह कुछ ही समय पश्चात् वि० सं० १४६१ ई० सन् १४३४ में मर गया और शाहजादा गजनीखाँ बादशाह बना। सं० धरणा को नांदिया ग्राम से उसने मानपूर्वक निमन्त्रित करके बुलवाया और तीन लक्ष के स्थान पर ६ लक्ष द्रव्य देकर अपना ऋण चुकाया तथा सं० धरणा को राजसभा में उच्चपद प्रदान किया। सं० धरणा पर बादशाह गजनीखाँ की दिनोंदिन प्रीति अधिकाधिक बढ़ने लगी। यह देखकर मांडवगढ़ के अमीर और उमराव सं० धरणा से ईर्ष्या करने लगे। सं० धरणा इन सर्व की परवाह करने वाला व्यक्ति नहीं था। परन्तु कलह बढ़ता देखकर उसनें मांडवगढ़ का त्याग करके नांदिया आना उचित समझा, परन्तु बादशाह ने सं० धरणा को नांदिया लौटने की आज्ञा प्रदान नहीं की। सं० धरणा बड़ा ही धर्मात्मा एवं जिनेश्वर-भक्त था। उसने शत्रुञ्जयतीर्थ की संघयात्रा करने का विचार किया और बादशाह की आज्ञा लेकर संघ-यात्रा की तैयारी करने लगा। इस पर सं० धरणा के दुश्मनों को बादशाह को बहकाने का अवसर हाथ लग गया। उन्होंने बादशाह से कहा कि सं० धरणा संघ-यात्रा का बहाना करके नांदिया लौटना चाहता है तथा मांडवगढ़ में अर्जित विपुल सम्पत्ति को भी साथ लें जाना चाहता है। बादशाह गजनीखाँ बड़ा ही दुर्व्यसनी और व्यभिचारी था और वैसा ही कानों का अत्यधिक कच्चा भी था। अतः उसके दरबार में नित नये षड़यन्त्र बनते रहते थे और

History of Mediaeval India by Iswari Prasad P. 388

राजतन्त्र बिगड़ने लग गया था। सं० धरणा के दुश्मनों की यह चाल सफल हो गई और बादशाह ने तुरन्त ही सं० धरणा को कैद में डाल दिया। सं० धरणा के कारागार के दण्ड को श्रवण करके मांडवगढ़ के अति समृद्ध एवं प्रभावशाली श्रीसंघ में अग्नि लग गई।

श्री संघ ने सं० धरणा को कारागार से मुक्त कराने के लिये भरसक यत्न किये, परन्तु दुर्व्यसनी बादशाह गजनीखाँ ने कोई ध्यान नहीं दिया। बादशाह गजनीखाँ ने कुछ ही समय में अपने प्रतापी पिता हुसंगशाह की सारी सम्पत्ति को विषय भोग में खर्च कर डाला और पैसे २ के लिये तरसने लगा। राजकोष एक दम खाली हो गया। बादशाह गजनीखाँ को जब द्रव्य प्राप्ति का कोई साधन नहीं दिखाई दिया तो उसने सं० धरणा को चौरासी ज्ञाति के एक लक्ष सिक्के लेकर छोड़ना स्वीकृत किया। अन्त में सं० धरणा चौरासी ज्ञाति के एक लक्ष रुपये देकर कारागार से मुक्त हुआ। और अपने ग्राम नांदिया की ओर प्रस्थान करने की तैयारी करने लगा। उन्हीं दिनों मांडवगढ़ की राजसभा में एक बहुत बड़ा षड़यन्त्र रचा गया। मुहम्मद खिलजी नामक एक प्रसिद्ध एवं बुद्धिमान व्यक्ति बादशाह का प्रधान मन्त्री था। वह बड़ा ही बहादुर और तेजस्वी था। बादशाह गजनी की प्रधान के आगे कुछ भी नहीं चलती थी। गजनीखाँ को सिंहासनारूढ़ हुये पूरे दो वर्ष भी नहीं हो पाये थे कि राजकर्मचारी, सामंत, अमीर और प्रजा उसके दुर्गुणों से तंग आ गई और सर्व उसके राज्य का अन्त चाहने लगे। अन्त में वि० सं० १४९३ ई० सन् १४३६ में मुहम्मद खिलजी ने बादशाह गजनीखाँ को कैद करके अपने को मांडवगढ़ का बादशाह घोषित कर दिया। राजसभा में जब यह घटना चल रही थी सं० धरणा मांडवगढ़ से चुपचाप निकल पड़ा और अपने ग्राम नांदिया में आ गया।

सिरोही के महाराव का प्रकोप और सं० धरणा का मालगढ़ में बसना

नांदिया सिरोही-राज्य का ग्राम था और उन दिनों सिरोही के राजा महाराव सेसमल थे। महाराव सेसमल प्रतापी थे और उन्होंने आस-पास के प्रदेश को जीत कर अपना राज्य अत्यधिक बढ़ा लिया था। सेसमल बड़े स्वाभिमानी राजा थे। सं० धरणा सिरोही-राज्य का अति प्रतिष्ठित पुरुष था। सं० धरणा का मांडवगढ़ में जाकर कैद होना उन्हें बहुत बुरा अखरा और उसमें उनको अपनी मान-हानि का अनुभव हुआ। महाराव सेसमल ऐसा मानते थे कि अगर सं० धरणा शाहजादा को रुपया उधार नहीं देता तो सं० धरणा कभी मांडवगढ़ में जाकर कैद भी नहीं होता, इस प्रकार सं० धरणा को उसके खुद के कैदी बनने का कारण महाराव सेसमल सं० धरणा को ही समझते थे और उसको भारी दण्ड देने पर तुले बैठे थे। सं० धरणा को यह ज्ञात हो गया कि महाराव सेसमल उस पर अत्यधिक कुपित हुये बैठे हैं, वह नांदिया ग्राम को त्याग कर सपरिवार मालगढ़ नामक ग्राम में, जो मेदपाट प्रदेश के अन्तर्गत था आ बसा। महाराणा कुम्भा उन दिनों प्रसिद्ध दुर्ग कुम्भलमेर में ही अधिक रहते थे। मालगढ़ और कुम्भलगढ़ एक ही पर्वतश्रेणी में कुछ ही कोषों के अन्तर पर आ गये हैं। जब महाराणा कुम्भा ने यह सुना कि सं० धरणा मालगढ़ में सपरिवार आ बसे हैं, उन्होंने अपने

---

१. सि० इति० पृ० १६४-६५

२. बाली (मरुधर) के कुलगुरु भट्टारक मियाचन्द्रजी की पौषधशाला की वि० सं० १६२५ में पुनर्लिखित सं० धरणा के वंशजों की ख्यातप्रति के आधार पर।

विश्वासपात्र सामन्तों को भेजकर मानपूर्वक सं० धरणा को राजसभा में बुलवाया और सं० धरणा का अच्छा मान किया, तथा सं० धरणा को अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों में स्थान दिया।

महाराणा कुम्भकर्ण की राज्यसभा में सं० धरणा

महाराणा कुम्भकर्ण बड़े ही प्रतापी, यशस्वी, गुणी राजा थे। उनके दरबार में सदा गुणवानों और पुण्यात्माओं का स्वागत होता रहता था। ऐसे गुणी राजा की राज्य-सभा में अगर संघवी धरणाशाह का मान दिन दुगुना रात चौगुना बढ़ा

सं० धरणा महाराणा कुम्भकर्ण का मन्त्री रहा हो, ऐसा कोई प्रमाणिक उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है। सं० धरणा महाराणा के दरबार में अति सम्मानित व्यक्ति अवश्य थे, जो राणकपुर की प्रशस्ति से ही स्पष्ट सिद्ध होता है।

(१७) ....४० कुलकाननपंचाननस्य। विषमतमाभंगसारंग-
(१८) पुर नागपुर गागरण नराणकाऽजयमेरु मंडोर मंडलकर बूंदि
(१६) खाटू चाटू सूजानादि नानामहादुर्गलीलामात्रग्रहणप्रमाणि-
(३०) .... राणाश्रीकुम्भकर्णसर्वोर्वीपतिसार्वभौमस्य ४१ विजय-
(३१) मान राज्ये ....
(३२) .... श्रीमदहम्मद-
(३३) सुरत्राणदत्तफुरमाणसाधुश्रीगुणराजसंघपतिसाहचर्यकृताश्च-
(३४) र्यकारिदेवालयाडम्बरपुरः सरश्रीशत्रुञ्जयादितीर्थयात्रेण। अजा-
(३५) हरी पिंडरवाटकसालेरादि बहुस्थाननवीनजैनविहारजीर्णोद्धार-
(३६) पदस्थापनाविषमसमयसत्रागारनानाप्रकारपरोपकारश्रीसंघस-
(३७) त्काराद्यगण्यपुण्यमहार्थकयाणकपूर्यमाणभवार्णवतारणक्षम-

--राणपुरतीर्थप्रशस्ति, प्रा० जै० ले० सं० भा० २ ले० ३०७

हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। महाराणा कुम्भकर्ण का राज्य अजमेर, मंडोर, नागपुर, गागरण, बूंदी तथा खाटू, चाटू तक विस्तृत था। फलतः उनके दरबार में अनेक वीर, यौद्धा, श्रीमन्त, सज्जन व्यक्ति रहते थे। सं० धरणा महाराणा कुम्भकर्ण के अति विश्वास-पात्र एवं राज्य के अति प्रतिष्ठित श्रीमन्त व्यक्तियों में से थे।

परमार्हत सं० धरणाशाह का राणकपुर में नलिनीगुल्म-विमान त्रैलोक्यदीपक-धरणविहार नामक चतुर्मुख आदिनाथ जिनप्रासाद का बनवाना।

सं० धरणा को स्वप्न का होना

जैसा लिखा जा चुका है सं० धरणा बुद्धिमान, चतुर और जैसा नीतिज्ञ था, वैसा ही दृढ़ जैनधर्मी, गुरुभक्त और जिनेश्वरदेव का उपासक भी था। वह बड़ा तपस्वी भी था।

---

(४१) .... राणपुरनगरे राणाश्रीकुम्भकर्ण-
(४२) नरेन्द्रेण स्वनाम्ना निवेशिते तदीयसुप्रसादादेशतस्त्रैलोक्य-
दीपका— राणकपुर प्रशस्ति

अनेक पुस्तकों में मादड़ी ग्राम के विषय में बहुत बढ़ा-चढा कर लिखा है कि यहाँ २७०० सत्ताईसो घर तो केवल जैनियों के ही थे। और अन्य ज्ञातियों के फिर कितने ही सहस्रों होंगे। ये सब बातें अतिशयोक्तिपुर्ण हैं, जो मंदिर के आकार की विशालता को देखकर अनुमानित की गई हैं। लेखक श्री त्रैलोक्यदीपक धरणविहार

उसने बत्तीस वर्ष की युवावस्था में ही शीलव्रत ग्रहण कर लिया था। और नवीन २ जिनप्रासाद बनवाने की नित्य कल्पना किया करता था। एक रात्रि को उसने स्वप्न में नलिनीगुल्म-विमान को देखा और नलिनीगुल्मविमान के आकार का एक जिनप्रासाद बनवाने का उसने स्वप्न में ही संकल्प भी किया। प्रातःकाल होते ही उसने स्वप्न और अपने निश्चय की अपने परिजनों के समक्ष चर्चा की। विमान तो उसको स्मरण रह गया, परन्तु उसका नाम उसको स्मरण नहीं रहा, अतः वह यह नहीं समझा सका कि वह कैसा जिनालय बनवाना चाहता है। फलतः उसने दूर २ से अनेक चतुर शिल्पविज्ञ कार्यकरों (कारीगरों) को बुलवाया। आये हुये कार्यकरों ने अनेक मन्दिरों के भांति-भांति के रेखाचित्र बना बनाकर धरणाशाह को दिखाये। उनमें से मुंडाराग्राम के रहने वाले शिल्पविज्ञ देपाक नामक सोमपुरा ने

के शिला-लेखों का संग्रह करने की दृष्टि से वहाँ ३०-५-५० से ३-६-५० तक रहा। और पार्श्ववर्त्ती समस्त भाग का बड़ी सूक्ष्मता एवं गवेषणात्मक दृष्टि से अवलोकन किया। उपत्यका में मैदान अवश्य बड़ा है; परन्तु वह ऐसा विषम और टेढ़ा-मेढ़ा है कि वहाँ इतना विशाल नगर कभी था अमान्य प्रतीत होता है। दूसरी बात जीर्ण एवं खण्डित मकानों के चिह्न आज भी मोजूद हैं, जिनको देखकर भी यह अनुमान लगता है कि यहाँ साधारण छोटा-सा ग्राम था। तृतीय सुदृढ़ शंका जो होती है, वह यह कि अगर मादड़ी त्रैलोक्यदीपक जिनालय के बनने के पूर्व ही विशाल नगर था तो जैसी भारत में अनादिकाल से ग्राम और नगरों को संकोच कर बसाने की पद्धति रही है, इतने विशाल नगर में इतना खुला भाग कैसे निकल आया? त्रैलोक्यदीपक जिनालय का वह प्रकोष्ट जो व्यवस्थापिका

नलिनीगुल्मविमान का रेखाचित्र बनाकर प्रस्तुत किया। सं० धरणा ने देपाक को अपना प्रमुख कार्यकर नियुक्त किया।

मादड़ी ग्राम और उसका नाम राणकपुर रखना

अर्वली अथवा आड़ावला पर्वत की विशाल, उन्नत एवं रम्य श्रेणियाँ मरुधर-प्रान्त तथा मेदपाट-प्रदेश की सीमा निर्धारित करती हैं और वे मरुधर से आग्नेय और मेदपाट के पश्चिम में आई हुई हैं। इन पर्वतश्रे-णियों में होकर अनेक पथ दोनों प्रदेशों में जाते हैं। जिनमें देसूरी की नाल अधिक प्रसिद्ध है। कुम्भलगढ़ का प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग, जिसको प्रतापी महाराणा कुम्भकर्ण ने बनवाया था, इसी आड़ा-वाला पर्वत की महानतम शिखा पर आज भी सुदृढ़ता के साथ अनेक विपद्-बाधा झेलकर खड़ा है। महाराणा कुम्भकर्ण इसी दुर्ग में रहकर अधिकतर प्रबल शत्रुओं को छकाया करते

पेढी ने पर्वतों के ढ़ाल से जिनालय की ओर आने वाले पानी को रोकने के लिये जिनालय से दक्षिण तथा पूर्व में लगभग एक या डेढ फर्लांग के अन्तर पर बनाया है पर्याप्त लम्बा और ऊँचा है। और समस्त उपत्यका-स्थल में समतल भाग ही यही है जहाँ नगर का मध्य या प्रमुख भाग बसा होना चाहिए था। मेरी दृष्टि में तो यही उचित मालूम पड़ता है कि यहाँ साधारण ज्ञाति के लोगों का निवास था, जिनसे धरणाशाह ने भूमि खरीद कर ली। वे राजाज्ञा से यह भाग छोड़ कर कुछ दूरी पर जा बसे। यह अवश्य सम्भव है कि त्रैलोक्यदीपक जिनालय बनने के समय जैन आबादी अवश्य बढ़ गई हो। महाराणा और श्रीमन्तों की अट्टारियाँ बन गई हों, नगर की रमणिकता बढ़ गई हो, परन्तु मादड़ी एक अति विशाल नगर था, सत्य प्रतीत नहीं होता है।

श्री धरणविहार के पार्श्व में उत्तराभिमुख श्री पार्श्वनाथ-जिनालय

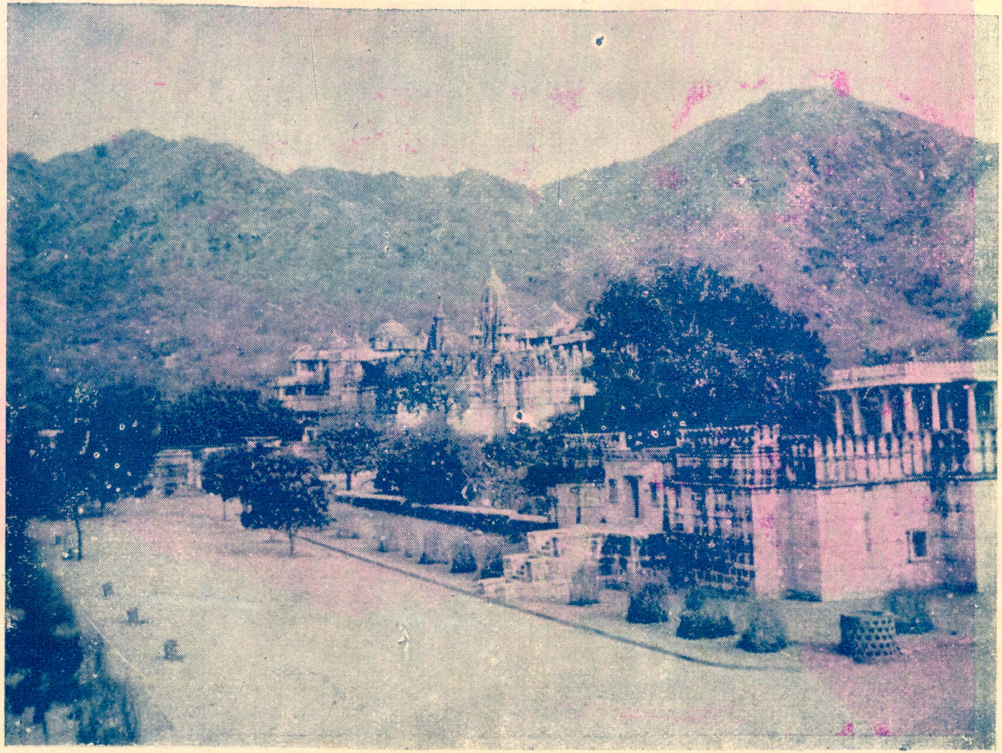

रम्य उपत्यका में मघानदी के तट पर वृक्षराजि के मध्य श्री राणकपुरतीर्थ

थे। कुम्भलगढ़ दुर्ग से १०-१२ मील के अन्तर पर मालगढ़ ग्राम आज भी विद्यमान है, जिसमें परमार्हत धरणा और रत्ना रहते थे। कुम्भलगढ़ से जो मार्ग मालगढ़ को जाता है, उसमें माद्री पर्वत पड़ता है। इसी माद्री पर्वत की रम्य उपत्यका में मादड़ी ग्राम जिसका शुद्ध नाम माद्री पर्वत की उपत्यका में होने से माद्री था बसा हुआ था। मादड़ी ग्राम अगम्य एवं दुर्भेद स्थल में भले नहीं भी बसा था, फिर भी वहाँ दुश्मनों के आक्रमणों का भय नितान्त कम रहता था। सं० धरणाशाह को त्रैलोक्य-दीपक नामक जिनालय बनवाने के लिये मादड़ी ग्राम ही सर्व प्रकार से उचित प्रतीत हुआ। रम्य पर्वत श्रेणियाँ, हरी-भरी उपत्यका, प्रतापी महाराणाओं के दुर्ग कुँभलगढ़ का सानिध्य, ठीक पार्श्व में मघा सरिता का प्रवाह, दुश्मनों के सहज भय से दूर आदि अनेक बातों को देख कर सं० धरणाशाह ने मादड़ी ग्राम में महाराणा कुम्भकर्ण से भूमि खरीद की और मादड़ी का नाम बदलकर राणकपुर रक्खा। राणकपुर महाराणा शब्द का राणक और सं० धरणा की ज्ञाति पोरवाल का पोर, पुर का योग है जो दोनों की कीर्त्ति को सूर्य-चन्द्र जब तक प्रकाशमान रहेंगे प्रकाशित करता रहेगा।

श्री त्रैलोक्यदीपक धरण-विहार नामक चतुर्मुख आदिनाथ जिनालय का शिलान्यास और जिनालय के भूगृहों व चतुष्क का वर्णन

विशाल संघ समारोह एवं धूम-धाम के मध्य सं० धरणा ने धरणविहार नामक चतुर्मुख आदिनाथ जिनालय की नींव वि० सं० १४६५ में डाली। इस समय दुष्काल का भी भयंकर प्रकोप था। गरीब जनता को यह वरदान सिद्ध हुआ। मुंडारा ग्राम निवासी प्रसिद्ध शिल्पज्ञ कार्यकर सोमपुराज्ञातीय देपाक की तत्त्वावधानता में

अन्य पच्चास कुशल कार्यकरों एवं अगणित श्रमकरों को रख कर कार्य प्रारम्भ करवाया। जिनालय की नीवें अत्यन्त गहरी खुदवाईं और उनमें सर्वधातु का उपयोग करके विशाल एवं सुदृढ़ दिवारें उठवाईं। चौरासी भूगृह बनवाये, जिनमें से पाँच अभी दिखाई देते हैं। दो पश्चिम द्वार की प्रतोली में हैं, एक उत्तर मेघनाथ-मंडप से लगती हुई भ्रमती में, एक अन्य देवकुलिका में और एक नैऋत्य कोण की शिखरबद्ध कुलिका के पीछे भ्रमती में हैं। शेष चतुष्क में छिपे हैं। जिनालय का चतुष्क सेवाड़ी ज्ञाति के प्रस्तरों से बना है, जो ४८००० वर्गफीट समानान्तर है। प्रतिमाओं को छोड़ कर शेष सर्वत्र सोनाणा प्रस्तर का उपयोग हुआ है। मूलनायक देवकुलिका के पश्चिमद्वार के बाहर उत्तर पक्ष की भित्ति में एक शिलापट पर वि० सं० १४९६ का लम्बा प्रशस्ति-लेख उत्कीर्णित है। इससे यह समझा जा सकता है कि यह मूलनायक देवकुलिका सं० १४९६ में बनकर

एक कथा ऐसी सुनी जाती है कि एक दिन सं० धरणाशाह ने घृत में पड़ी मक्षिका (माखी) को निकालकर जूते पर रख ली। यह किसी शिल्पी कार्यकर ने देख लिया। शिल्पियों ने विचार किया कि ऐसा कर्पण कैसे इतने बड़े विशाल जिनालय के निर्माण में सफल होगा। सं० धरणाशाह की उन्होंने परीक्षा लेनी चाही। जिनालय की जब नीवें खोदी जा रही थीं, शिल्पियों ने सं० धरणाशाह से कहा कि नीवों को पाटने में सर्वधातुओं का उपयोग होगा, नहीं तो इतना बड़ा विशाल जिनालय का भार केवल प्रस्तर की निर्मित दिवारें नहीं सम्भाल पायंगी। सं० धरणाशाह ने अतुल मात्रा में सर्वधातुओं को तुरन्त ही एकत्रित करवाईं। तब शिल्पियों को बड़ी लज्जा आई कि वह कर्पणता नहीं थी, परन्तु सार्थक बुद्धिमत्ता थी।

तैयार हो गई थी और वि० सं० १४९८ तक चारों सिंहद्वारों की भी रचना हो चुकी थी और जिनालय प्रतिष्ठित किये जाने के योग्य बन चुका था।

सं० धरणाशाह के अन्य तीन कार्य और त्रैलोक्य-दीपक धरणविहारनामक जिनालय का प्रतिष्ठोत्सव

राणकपुर नगर में सं० धरणा ने चार कार्य एक ही मुहूर्त में प्रारम्भ किये। सं० धरणाशाह का प्रथम महान् सत्कार्य तो उपरोक्त जिनालय का बनवाना है ही। अतिरिक्त उसने राणकपुर नगर में निम्न तीन कार्य और किये। एक विशाल धर्मशाला बनवाई। जिसमें अनेक चौक, कक्ष (ओरड़ियों) थे तथा जिसमें काष्ट

चतुरधिकाशीतिमितैः स्तंभैरमितैः प्रकृष्टतरकाष्टैः।
निचिता च पट्टशालाचतुष्किकापवरकप्रवरा ॥
श्री धरणनिर्मिता या पौषधशाला समस्त्यतिविशाला।
तस्यां समवासार्षुः प्रहर्षतो गच्छनेतारः ॥
—सोमसौभाग्यकाव्य

सं० धरणा का एक विशाल धर्मशाला के बनाने का निश्चय करना स्वाभाविक ही था। क्योंकि ऐसे महान् तीर्थ स्वरूप जिनालय की प्रतिष्ठा के समय अनेक प्रसिद्ध आचार्यों की अपने अनेक शिष्य-गणों के सहित आने की सम्भावना भी थी और ऐसे तीर्थों में अनेक साधु, मुनिराज सदा ठहरते हैं; अतः ठहरने की समुचित व्यवस्था तो होनी ही चाहिए।

यह धर्मशाला जीर्ण-शीर्ण अवस्था में अभी तक विद्यमान थी। वि० सं० २००४-५ में समूलतः नष्ट हो गई और फलतः उठवा दी गई।

के चौरासी उत्तम प्रकार के स्तम्भ थे। धर्मशाला में अनेक आचार्यों के एक साथ अपने मान-मर्यादापूर्वक ठहरने की व्यवस्था थी। अलग-अलग अनेक व्याख्यान-शालायें बनवाई गईं थीं। यह धर्मशाला दक्षिण द्वार के सामीप्य में थोड़े ही अन्तर पर बनाई गई थी।

यह प्रायः प्रथा-सी हो गई है कि तीर्थों में दानशालायें होती ही हैं। तीर्थों के दर्शनार्थ गरीब अभ्यागत अनेक आते रहते हैं। और फिर उन दिनों दानशालायें बनवाने का प्रचार भी अत्यधिक था। अतः धर्मात्मा सं० धरणा का राणकपुरतीर्थ में दानशाला खोलने का विचार कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सं० धरणाशाह का चतुर्थ कार्य अपने लिये महालय बनवाने का है। यह भी उचित ही था। तीर्थ का बनानेवाला तीर्थ की देख-रेख की दृष्टि से, भक्ति और उच्चभावों के कारण अपने बनाये हुये तीर्थ में ही रहना चाहेगा।

च्यारइ महूरत सामतां ऐ लीधा एक ही बार तु,
पहिलइ देवल मांडीउ ए बीजइ सत्तु कारतु,
पौषधशाला अति भक्ति ए मांडीअ देउल पासि तु,
चतुर्थउं महूरत धरणउं मंडाव्या आवाश तु,

यह उपरोक्त मेह कवि के वि० सं० १४९९ में बनाये हुये एक स्तवन का अंश है।

मेह कवि ने अपने इसी लम्बे स्तवन में एक स्थल पर इस प्रकार वर्णित किया है—

रलियाइति लखपति इणि घरि,
काका हिंव कीजई जगडू परि,

* श्री आदिनाथ प्रतिमा *

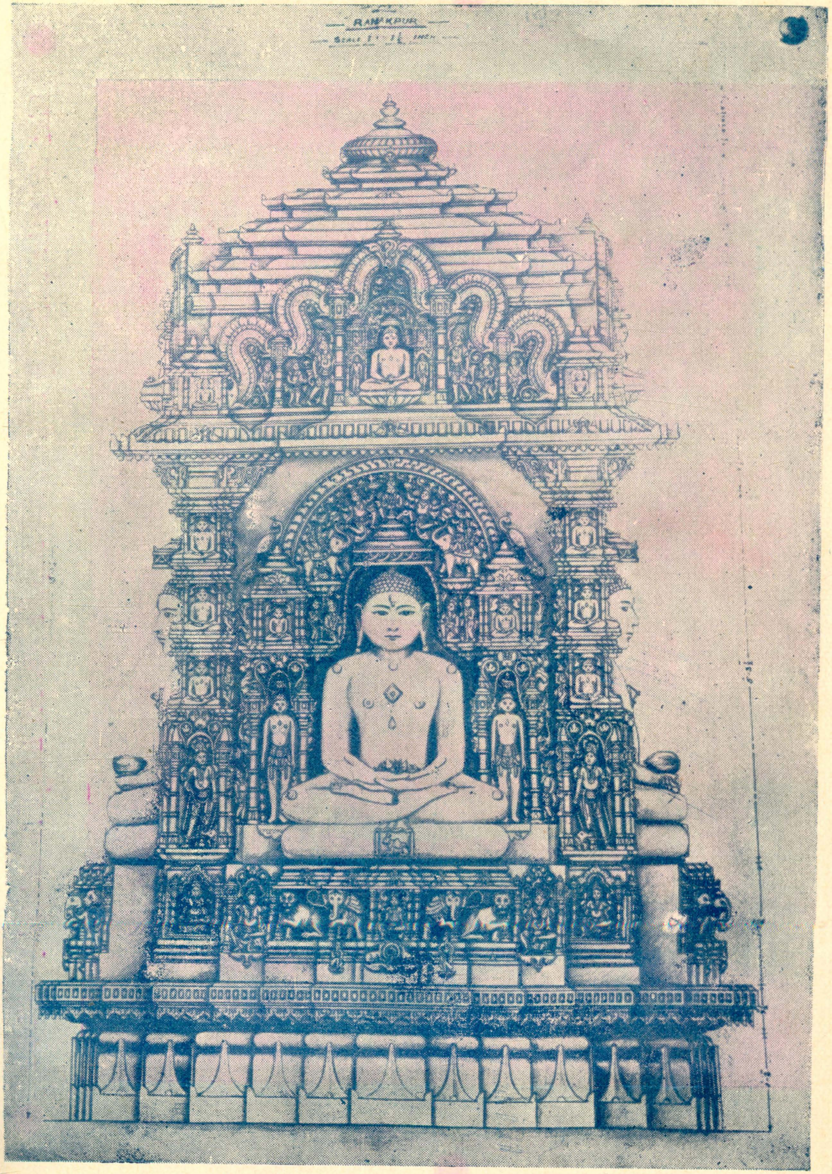

मूलनायक देवकुलिका का पश्चिम द्वार और रङ्गमंडप तथा मेघमंडप के कलामय स्तम्भों का दर्शन

द्वितीय कार्य-दानशाला बनवाई गई और तृतीय कार्य-अपने लिये एक अति विशाल महालय बनवाया। वि० सं० १४६८ तक दानशाला, महालय और धर्मशाला बन चुके थे।

प्राण-प्रतिष्ठोत्सव इस त्रैलोक्यदीपक धरणविहार नामक राणकपुरतीर्थ की अंजनशलाका वि० सं० १४६८ फा० कृ० ५ को और बिंवस्थापना फा० कृ० १० को (राजस्थानी चैत्र कृ० १०) सुविहितपुरन्दर गच्छाधिराज, परमगुरु, श्री देवसुन्दरसूरिपट्टप्रभाकर, श्री बृहत्तपागच्छेश, श्री सोमसुन्दरसूरिके कर-कमलों से, जो श्री जगच्चंद्रसूरि और श्री देवेन्द्रसूरि के वंश में थे, परमार्हत सं० धरणाशाह ने अपने ज्येष्ठ भ्राता सं० रत्नाशाह, भ्रातृजाया रत्नदेवी, भ्रातृज सं० लाषा, सलषा, मना, सोना और सालिग तथा स्वपत्नि धारलदेवी एवं अपने पुत्र जाषा और जावड़ के सहित बड़ी धूम-धाम से करवाई। आज भी उसकी पुण्य स्मृति में चै० कृ० १० (गुजराती फा० कृ० १०) को प्रतिवर्ष मेला होता है और उसी दिन नवध्वजा चढ़ाई जाती है। यह ध्वजा और पूजा सं० धरणाशाह के वंशजों द्वारा जो घाणेराव में रहते हैं चढ़ाई और उनकी ही ओर से

जगडू कहीयई रायां सधार,
आपण पे देस्या लोक आधार।

अर्थात् वि० सं १४६५ में भारी दुष्काल पड़ा। सं० धरणाशाह को उसके भ्रातृज ने जगत्-प्रख्यात महादानी जगडूशाह श्रेष्ठि के समान दुष्काल से पीड़ित, क्षुधित दीन, गरीब जनता की सहायता करने की प्रार्थना की। भ्रातृज की प्रार्थना को मान देकर सं० धरणा ने त्रैलोक्यदीपकतीर्थ, धर्मशाला, स्वनिवास बनवाना प्रारम्भ किया तथा सत्रालय खुलवाया।

पूजा भी बनाई जाती है। इस प्रतिष्ठोत्सव में दूर २ के अनेक नगर, ग्रामों से ५२ बावन बड़े संघ आये थे तथा अनेक बड़े २ आचार्य अपने शिष्यगणों के सहित उपस्थित हुये थे। इस प्रकार ५०० साधु-मुनिराज एकत्रित हुये थे। उक्त शुभ दिवस में मूल-नायक-युगादिदेव-देवकुलिका में सं० धरणाशाह ने एक सुन्दर प्रस्तर पीठिका के ऊपर चारों दिशाओं में अभिमुख युगादिदेव भगवान् आदिनाथ की भव्य एवं श्वेत प्रस्तर विनिर्मित चार सपरिकर विशाल प्रतिमाएं स्थापित कीं। प्रतिष्ठोत्सव दिन से ही पश्चिम सिंहद्वार के बाहर अभिनय होने लगे। दक्षिण सिंह-द्वार के बाहर श्री सोमसुन्दरसूरि तथा अन्य आचार्यों, मुनि-महाराजों के दर्शनार्थ श्रावकों का समारोह धर्मशाला के द्वार पर लगा रहता था, पूर्वसिंह-द्वार के बाहर वैताढ्यगिरि का मनोहारी दृश्य था, जिसको देखने के लिये भीड़ लगी रहती और उत्तर सिंह-द्वार के बाहर श्रावक-संघ दर्शनार्थ एकत्रित रहते।

प्रतिष्ठावसर पर सं० धरणाशाह ने अनेक आश्चर्यकारक कार्य किये तथा दीनों को बहुत दान दिया और उनका दारिद्र्य दूर किया।

प्रतिष्ठोत्सव के समाप्त हो जाने पर श्री सोमदेव वाचक को आचार्यपद प्रदान किया गया। सं० धरणाशाह ने आचार्य-पदोत्सव को बहुत द्रव्य व्यय करके मनाया।

१—वि० सं० १४६६ में मेहकविकृत राणकपुरतीर्थस्तवन।

२—उत्तराभिमुख मूलनायक प्रतिमा वि० सं० १६७९ की प्रतिष्ठित है। इससे यह सिद्ध होता है कि सं० धरणाशाह की स्थापित प्रतिमा खण्डित हो गई है। अतः प्राग्वाट ज्ञातीय विरधा और उसके पुत्र हेमराज नवजी ने उक्त प्रतिमा स्थापित की।

परमार्हत सं० धरणा द्वारा अपने कुटुम्बीजनों के श्रेयार्थ प्रतिष्ठित प्रतिमा, परिकर

वि० सं०	आचार्य	प्रतिमा	दिशा
	प्रथम खंड की मूलनायक देवकुलिका में		
१४६८फा.कृ.५	सोमसुन्दरसूरि	आदिनाथसपरिकर	पश्चिमाभिमुख
"	"	"	दक्षिणाभिमुख
"	"	"	पूर्वाभिमुख
"	"	"	उत्तराभिमुख
	द्वितीय खंड की देवकुलिका में		
१५०७चै.कृ.५	रत्नशेखरसूरि	"	पश्चिमाभिमुख
१५०६वै.शु.२	"	परिकर	पूर्वाभिमुख
१५०८चै.शु.१३	"	सपरिकर	उत्तराभिमुख
	तृतीय खंड की देवकुलिका में		
१५०६वै.शु.२	"	परिकर	पश्चिमाभिमुख
"	"	"	दक्षिणाभिमुख
"	"	"	पूर्वाभिमुख
"	"	"	उत्तराभिमुख

१—उपरोक्त संवतों से यह तो सिद्ध है कि सं० धरणा वि० सं० १५०६ में जीवित था। तथा उक्त तालिका से यह भी सिद्ध होता है कि धरणविहार का निर्माण-कार्य धरणाशाह की मृत्यु तक बहुत कुछ पूर्ण भी हो चुका था—जैसे मूलनायक त्रिमंजली युगादिदेवकुलिका का निर्माण और चारों सभामण्डपों की तथा चारों सिंह-द्वारों की

इस धरणविहारतीर्थ में सं० धरणाशाह का अन्तिम कार्य मूलनायक देवकुलिका के ऊपर द्वितीय खण्ड में प्रतिष्ठित पूर्वाभिमुख प्रतिमा का परिकर है, जिसकी वि० सं० १५०६ वै० शु० २ को रत्नशेखरसूरि के करकमलों से स्थापित करवाया था। यह इससे सम्भव लगता है कि वि० सं० १५१०-११ में सं० धरणाशाह स्वर्गवासी हुआ।

श्री राणकपुरतीर्थ की स्थापत्यकला

धरणविहार नामक इस युगादिदेव-जिनप्रासाद की बनावट चारों दिशाओं में एक-सी प्रारम्भ हुई और सीढ़ियाँ, द्वार, प्रतोली और तदोपरी मंडप, देवकुलिकायें और उनका प्रांगण, भ्रमती, विशाल मेघमण्डप, रंगमण्डपों की रचना, एक माप, एक आकार और एक संख्या और ढंग की करती हुई चतुष्क के मध्य में प्रमुख त्रिमंजली, चतुष्द्वारवती शिखरबद्ध देवकुलिका का निर्माण करके समाप्त हुई। यह प्रासाद इतना भारी, विशाल और ऊंचा है कि देखकर महान् आश्चर्य होता है। प्रासाद के स्तम्भों की संख्या १४४४ हैं। मेघमण्डप एवं त्रिमंजली प्रमुख देवकुलिका के स्तम्भों की ऊंचाई चालीस फीट से ऊपर है। इन स्तम्भों की रचना इतनी कौशलयुक्त संख्या एवं समानान्तर पंक्तियों की दृष्टि से की गई है कि प्रासाद में कहीं भी खड़े होने पर सामने की दिशा में विनिर्मित देवकुलिका में प्रतिष्ठित प्रतिमा

प्रतोलियों की (पोल) रचना, परिकोष्ट में अधिकांश देवकुलिकाओं और उनके आगे की स्तंभवतीशाला (वरशाला) तथा अन्य अनिवार्यतः आवश्यक अंगों का बनना आदि।

२—मेरे द्वारा संग्रहित लेखों के आधार पर।

के दर्शन किये जा सकते हैं। प्रमुख देवकुलिका ने चतुष्क का उतना ही समानान्तर भाग घेरा है, जितना भाग प्रतोली एवं सिंह-द्वारों ने चारों दिशाओं में अधिकृत किया है। प्रासाद में चार कोणकुलिकाओं के तथा मूलनायक-कुलिका का शिखर मिलाकर ५ शिखर हैं, १८४ भूगृह हैं, जिनमें पाँच खुले हैं, आठ सब से बड़े और आठ उनसे छोटे और आठ उनसे छोटे कुल २४ मण्डप हैं, ८४ देवकुलिकायें हैं, चारों दिशाओं के चार सिंह-द्वार हैं। समस्त प्रासाद सोनाणा और सेवाड़ी प्रस्तरों से बना है और इतना सुदृढ़ है कि आततायियों के आक्रमण को और ५०० पाँच सो वर्ष के काल को झेल कर भी आज वैसा का वैसा बना खड़ा है। परमार्हत सं० धरणाशाह की उज्ज्वल कीर्ति का

कथा ऐसी प्रचलित है कि मुण्डारानिवासी सोमपुरा देपाक एक साधारण ज्ञानवाला शिल्पकार था। सं० धरणाशाह द्वारा निमन्त्रित कार्यकरों में वह भी था। देपाक को रात्रि में देवी का स्वप्न हुआ, क्योंकि वह देवी का परम भक्त था। देवी ने देपाक को कहा कि वह ऐसा चित्र बनाकर ले जावे जैसा चित्र एक कृषक सीधा और आड़ा हल चलाकर अपने क्षेत्र में उभार देता है, जिसमें केवल प्रायः समानान्तर सीधी और आड़ी रेखाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है। जहाँ ये सीधी और आड़ी रेखायें परस्पर एक दूसरे से मिलती अथवा काटती हैं, वहाँ स्तम्भों का आरोपण समझना चाहिए। सोमपुरा देपाक देवी के आदेश एवं संकेत के अनुसार रेखा-चित्र बना कर ले गया। नलिनीगुल्मविमान इसी चित्र के आकार का होता है। बस सं० धरणाशाह ने देपाक का चित्र पसन्द किया और देपाक को प्रमुख कार्यकर बनाकर उसकी देख-रेख में मन्दिर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ करवाया।

यह प्रतीक सैकड़ों वर्षों और तद्विषयक इतिहास अनन्त वर्षों तक उसके नाम और गौरव को संसार में प्रकाशित करता रहेगा।

जिनालय के चार सिंह-द्वारों की रचना

चतुष्क की चारों बाहों पर मध्य में चार द्वार बने हुये हैं। द्वारों की प्रतोलियाँ अन्दर की ओर हैं। द्वारों के नाम दिशाओं के नाम पर ही हैं। पश्चिमोत्तर द्वार प्रमुख द्वार है। प्रत्येक द्वार की बनावट एक-सी है। प्रत्येक द्वार के आगे क्रमशः बड़ी और छोटी दो २ चतुष्किका हैं, जिन पर क्रमशः त्रि० और द्वि० मंजली गुम्बजदार महालय हैं। फिर सीढ़ियाँ हैं, जो जमीन के तल तक बनी हुई हैं।

चार प्रतोलियों का वर्णन.

चारों द्वारों की प्रतोलियों की बनावट एक-सी है। प्रतोलियों का आँगन-भाग छतदार है और जिनालय के भीतर प्रवेश करने के लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। चारों प्रतोलियों का यह भाग खुला हुआ है और भ्रमती से जाकर मिलता है। इस खुले हुये भाग के उपर विशाल गुम्बज है। चारों प्रतोलियों के उपर के गुम्बजों में वलयाकार अद्भुत कला-कृति है। जिसको देखते ही बनता है।

इन वलयों की कला को देख कर मुझको मैन्चैस्टर की जगत-विख्यात झालियों का स्मरण हो आया, जो मैंने अनेक बड़े २ अद्भुत संग्रहालयों में देखीं। परन्तु इस कर-कला-कृति की सजीवता और चिर-नवीनता और शिल्पकार की टाँकी का जादू उस यन्त्र-कला-कृति में कहाँ ?

प्रतोलियों के उपर के महालयों का वर्णन

दक्षिण प्रतोली के उपर के महालय में एक प्रोत्थित वेदिका पर श्रेष्ठि-प्रतिमा है, जो खड़ी हुई है। उस पर सं० १७२३ का लेख है। पूर्व और पश्चिम प्रतोलियों के उपर के महालयों में गजारूढ़ माता मरुदेवी की प्रतिमा है, जिसकी दृष्टि सीधी मूल-मन्दिर में प्रतिष्ठित आदिनाथ बिंब पर पड़ती है। उत्तर द्वार की प्रतोली के उपर के महालय में सहस्रकुटि हैं, जिसको राणक-स्तम्भ भी कहते हैं। यह अपूर्ण हैं। यह क्यों नहीं पूर्ण किया जा सका, उसके विषय में अनेक दन्त-कथायें प्रचलित हैं। इस सहस्र-कुटि-स्तम्भ पर छोटे-बड़े अनेक शिलालेख पतली पट्टियों पर उत्कीर्णित हैं। जिनसे प्रकट होता है कि इस स्तम्भ के भिन्न २ भाग तथा प्रभागों को भिन्न २ व्यक्तियों ने बनवाया। जैसी दन्त-कथा प्रचलित है कि इसका बनाने का विचार प्रतापी महाराणा कुम्भकर्ण ने किया और व्यय अधिक होता देखकर प्रारम्भ करके अथवा कुछ भाग बन जाने पर ही छोड़ दिया।

प्रकोष्ठ देवकुलिकाओं और भ्रमती का वर्णन.

प्रकोष्ठ चतुष्क पर बाहिर की ओर कुछ इञ्च स्थान छोड़कर चारों ओर चतुष्क की चारों बाहों पर प्रकोष्ठ बनाया गया है, जिसमें चारों प्रमुख द्वार चारों दिशाओं में खुलते हैं। द्वारों द्वारा अधिकृत भाग छोड़ कर प्रकोष्ठ के शेष भाग में देवकुलिकायें

सं० १७२३ का लेख पूरा पढ़ा नहीं जाता है। पत्थर में खड्डे पड़ गये हैं और अक्षर मिट गये हैं। सं० १५५१ वर्षे वैसाख बदि ११ सोमे सं० जावड़ भा० जसमादे पु० गुणराज भा० सुगतादे पु० जग-माल भा० श्री वछ करावितं।

बनी हुई हैं, जो आमने-सामने की दिशाओं में संख्या और आकार-प्रकार में एक-सी हैं। ये कुल देवकुलिकायें संख्या में ८० हैं। इनमें से छिहत्तर देवकुलिकायें तो एक-सी शिखरबद्ध और छोटी हैं। ४ चार इनमें से बड़ी हैं, जिनमें से दो उत्तर-द्वार की प्रतोली के दोनों पक्षों पर हैं-पूर्व पक्ष पर महावीरदेवकुलिका और पश्चिम पक्ष पर समवसरणकुलिका है। इसी प्रकार दक्षिण द्वार की प्रतोली के पूर्व पक्ष पर आदिनाथकुलिका और पश्चिम पक्ष पर नंदीश्वरकुलिका है। इन चारों की बनावट विशालता एवं प्रकार की दृष्टि से एक-सी हैं। ये चारों गुम्बजदार हैं। इनके प्रत्येक के आगे गुम्बजदार रंगमण्डप है, जो छोटी देवकुलिकाओं के प्रांगण-भाग से आगे निकला हुआ है। समस्त छोटी देव-कुलिकाओं का प्रांगण स्तम्भ उठा कर छतदार बनाया हुआ है। उपरोक्त रंगमण्डपों तथा देवकुलिकाओं के प्रांगण के नीचे भ्रमती है, जो चारों कोणों की विशाल शिखरबद्ध देवकुलिकाओं के पीछे चारों प्रतोलियों के अन्तरमुखों को स्पर्श करती हुई और चारों दिशाओं में बने चारों मेघ-मण्डपों को स्पर्शती हुई चारों ओर जाती है।

कोणकुलिकाओं का वर्णन. चारों कोणों में चार शिखरबद्ध चार विशाल देवकुलिकायें हैं। प्रत्येक देवकुलिका के आगे विशाल गुम्बजदार रंग-मण्डप है। इन देवकुलिकाओं को महाधर-प्रासाद भी लिखा है। ये इतनी विशाल हैं कि प्रत्येक एक अच्छा जिनालय है। ये चारों भिन्न २ व्यक्तियों द्वारा बनवाई गई हैं। इनमें जो लेख हैं वे वि० सं० १५०३, १५०७, १५११ और १५१६ के हैं। इस प्रकार धरणविहार में अस्सी दिशाकुलिकायें और चार कोण-कुलिकायें मिलाकर कुल चौरासी देवकुलिकायें हैं।

मेघनाद-मण्डप के लोलकयुक्त एवं कलामय घूमट और उसमें अभिनेत्रियों के रूप में—

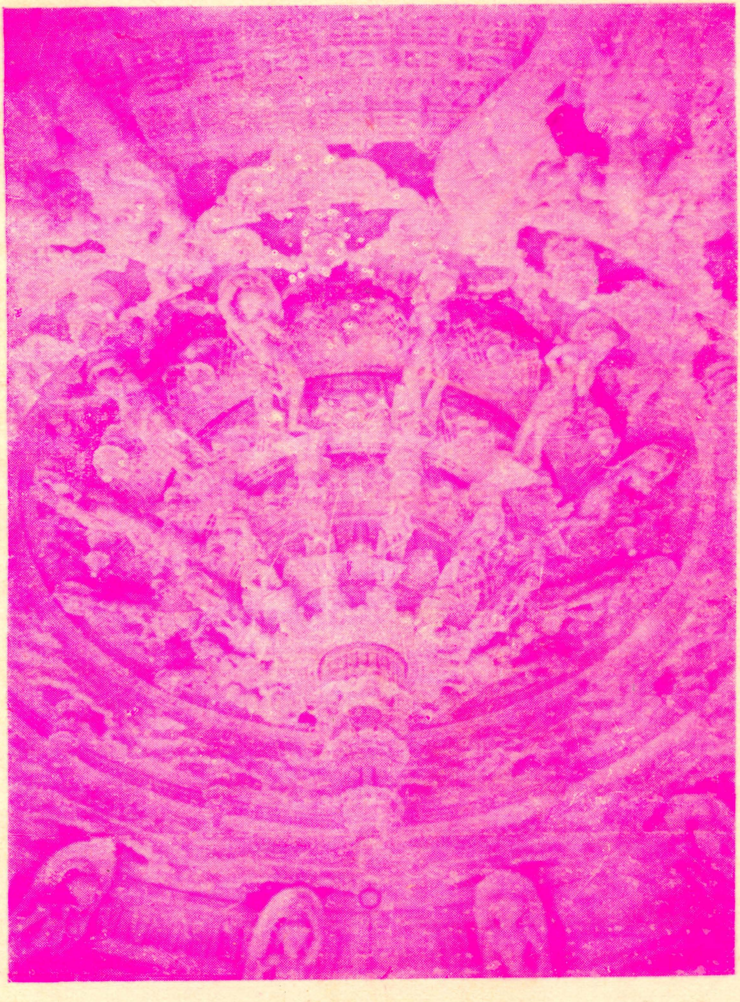

● सोलह नर्तकी देवपुत्तलियों का हृदयहारि दृश्य ●

एक मेघनादमण्डप के घूमट की छत में सुन्दर शतदलकमल और उसके सर्वदिक् १६ देवियों का दृश्य

मेघ-मण्डप और उसकी शिल्पकला. चारों दिशाओं में चार मेघमण्डप हैं, जिनको इन्द्रमण्डप भी कह सकते हैं। प्रत्येक मण्डप लगभग ऊँचाई में चालीस फीट से अधिक है। इनकी विशालता और प्रकार भारत में ही नहीं, जगत के बहुत कम स्थानों में मिल सकते हैं। दो कोण-कुलिकाओं के मध्य में एक २ मेघ-मण्डप की रचना है। स्तम्भों की ऊँचाई और रचना तथा मण्डपों का शिल्प की दृष्टि से कलात्मक सौन्दर्य दर्शकों को आल्हादित ही नहीं आत्मविस्मृति करा देता है। घण्टों निहारने पर भी दर्शक थकता नहीं है।

रंग-मण्डप. मेघ-मण्डपों से जुड़े हुये चारों दिशाओं में मूल-मन्दिर के चारों द्वारों के आगे चार रंगमण्डप हैं, जो विशाल एवं अत्यन्त सुन्दर है। मेघ-मंडपों के आंगन-भागों से रंगमण्डप कुछ प्रोत्थित चतुष्कों पर विनिर्मित है। पश्चिम दिशा का रंगमण्डप जो पश्चिमाभिमुख मूलनायक-देवकुलिका के आगे बना है, दोहरा एवं अधिक मनोहारी है। उसमें पुतलियों का प्रदर्शन कलात्मक एवं पौराणिक है।

राणकपुरतीर्थ चतुर्मुख प्रासाद क्यों कहलाता है? त्रैलोक्यदीपक धरणविहारतीर्थ की प्रमुख देवकुलिका जो चतुर्मुखी देवकुलिका कहलाती है, चतुष्क के ठीक बीचों-बीच में विनिर्मित है। यह तोन खण्डी है। प्रत्येक खण्ड की कुलिका के

टॉड साहब का राणकपुरतीर्थ के उपर लिखते समय नीचे टिप्पणी में यह लिख देना कि सं० धरणा ने इस तीर्थ की नींव डाली और चन्दा करके इसको पूरा किया—जैन-परिपाटी नहीं जानने के कारण तथा अन्य व्यक्तियों के द्वारा विनिर्मित कुलिकाओं, मण्डप एवं प्रतिष्ठित प्रतिमाओं को देख कर ही उन्होंने ऐसा लिख दिया है।

भी चार द्वार हैं। जो प्रत्येक दिशा में खुलते हैं। प्रत्येक खण्ड में वेदिका पर चारों दिशाओं में मुंह करके श्वेतप्रस्तर की चार सपरिकर प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं। कुल में से २-३ के अतिरिक्त सर्व सं० धरणाशाह द्वारा वि० सं० १४६८ से १५०६ तक की प्रतिष्ठित हैं। इन चतुर्मुखी खण्डों एवं प्रतिमाओं के कारण ही यह तीर्थ चतुर्मुखप्रासाद के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इस चतुर्मुखी त्रिखण्डी युगादिदेवकुलिका का निर्माण इतना चातुर्य्य एवं कौशलपूर्ण है कि प्रथम खण्ड में प्रतिष्ठित मूलनायक प्रतिमाओं के दर्शन अपनी २ दिशा में के सिंहद्वारों के बाहर से चलता हुआ भी ठहर कर कोई यात्री एवं दर्शक कर सकता है तथा इसी प्रकार समुचित अन्तर एवं ऊँचाई से अन्य उपर के दो खण्डों की प्रतिमाओं के दर्शन भी प्रत्येक दिशा में किये जा सकते हैं।

इस प्रकार यह श्री धरणविहार आदिनाथ चतुर्मुख जिनालय भारत के जैन अजैन मन्दिरों में शिल्प एवं बिशालता की दृष्टि से अद्वितीय है—पाठक सहज समझ सकते हैं। शिल्पकला-प्रेमियों को आश्चर्यकारी, दर्शकों को आनन्ददायी यह मन्दिर सचमुच ही शिल्प एवं धर्म के क्षेत्रों में जाज्वल्यमान ही है, अतः इसका त्रैलोक्यदीपक नाम सार्थक ही है।

प्रथम खण्ड की मूलनायकदेवकुलिका के पश्चिमद्वार के बाहिर दांही ओर एक चौड़ी पट्टी पर राणकपुर-प्रशस्ति वि० सं० १४९६ की उत्कीर्णित हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि राणकपुरतीर्थ की यह देवकुलिका उपरोक्त संवत् तक बन कर तैयार हो गई थी।

प्राग्वाटज्ञातीय श्रेष्ठि सं. रत्ना एवं सं. धरणाशाह का वंशवृक्ष

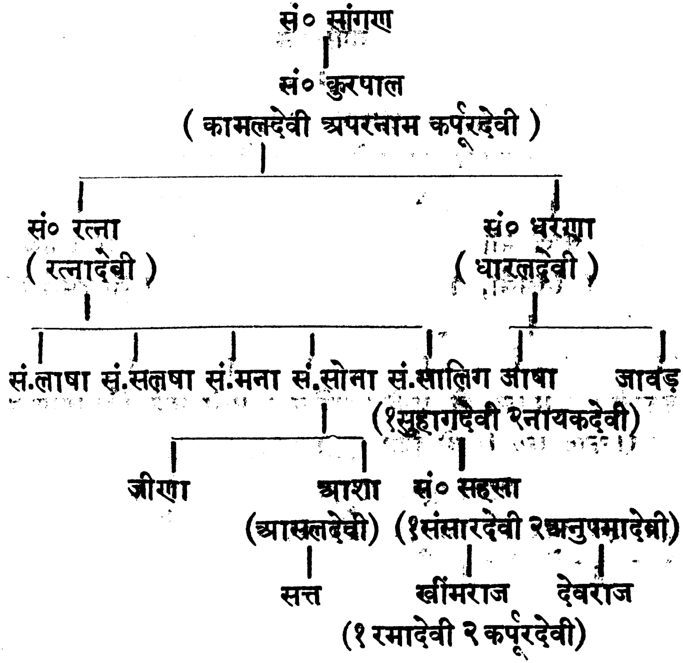

प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक ३०७ में 'मांगण' छपा है, परन्तु मूललेख-प्रस्तरपट्ट में सांगण है। अ० प्रा० जै० ले० सं० भा० २ लेखांक ४६४.

अचलगढ़ में विनिर्मित श्री चतुर्मुख ऋषभदेव मन्दिर के सं० सहसा के वि० सं० १५६६ के लेख सं० ४६४ में सं० रत्ना के पुत्र लाषा के पश्चात् सलषा उल्लिखित है। यह नाम राणकपुरतीर्थ की प्रशस्ति में नहीं है अखरता है।

सं० धरणा के वंशज

राणकपुर नगर कुछ वर्षों पश्चात् उजड़ हो गया। सं० धरणा और रत्नाशाह का परिवार सादड़ी में, जो राणकपुर से ठीक उत्तर में ७ मील के अन्तर पर बसा है जा बसा। फिर सादड़ी से सं० धरणा का परिवार घाणेराव में और सं० रत्ना का मांडवगढ़ (मालवप्रान्त की राजधानी) में जा बसा। घाणेराव के रहने वाले शाह नथमल माणकचन्द्रजी, चन्दनमल रत्नाजी, छगनलाल हंसाजी, हरकचन्द्र गंगारामजी, नथमलजी नवलाजी सं० धरणाशाह के वंशज हैं। त्रैलोक्यदीपक धरणविहार के उपर ध्वजा-दंड चढ़ाने का अधिकार उपरोक्त परिवारों को आज भी प्राप्त है। क्रम-क्रम से प्रत्येक परिवार प्रति वर्ष बिंबस्थापना दिवस फा० कृ० १० के दिन (राजस्थानी चैत्र कृ० १०) ध्वजा चढ़ाता है और प्रथम पूजा भी इनकी ही ओर से करवाई जाती है। इस परिवार का एक और घर मेदपाटप्रदेश के राज्य में ग्राम गुढ़ा में भी रहता है।

प्राग्वाट-इतिहास (सचित्र)

गत ६ वर्षों से जिस विश्रुत प्राग्वाट-इतिहास के पूर्वार्द्ध खराड की रचना की जा रही थी, शुभ समाचार विज्ञप्त करते हुये अत्यन्त आनन्द हो रहा है कि वह माघ शुक्ला त्रयोदशी (संवत् वर्तमान्) से छपना प्रारंभ हो गया है। उक्त इतिहास को अगर गौरवशाली एक जैनज्ञाति का ही इतिहास कह दिया जाय तो और अधिक संगत होगा। इस इतिहास में २५०० वर्ष पूर्व से वि० सं० १६०० तक का प्राग्वाटज्ञाति अर्थात् पौरवालज्ञाति का वर्णन प्रमाणित एवं प्राचीन ऐतिहासिक एवं साधन-सामग्री के आधार पर लिखा गया है। श्वेताम्बरतीर्थों में से तथा जगद्‌विश्रुत जैनमन्दिरों में से अधिकांश का वर्णन इसमें आ गया है। अनेक प्रसिद्ध रणवीरों का, महामंत्रियों का, दंडनायकों का, महाकवियों, विद्वानों, श्रीमंत श्रेष्ठियों, दानवीरों, धर्मात्माओं का तथा शासन के तेजस्वी सेवक साधु, आचार्यों का, ज्ञानभंडार के संस्थापकों का भी यथाप्राप्त पूरा २ वर्णन आया है। इसमें जैनतीर्थों एवं मन्दिरों के स्थापत्यकला-सम्बन्धी भी लगभग ८० से ऊपर चित्र बढ़िया आर्ट पेपर पर दिये गये हैं, जो भारतीय स्थापत्यकला के प्रतिजैन बन्धुओं के अनुराग को समझने में अधिक सहायभूत हो सकते हैं।

इतिहास की छपाई २३" × ३६" ऑफसेट ४४ पौंड के कागज पर ग्रेट-टाइप में बहुत ही आकर्षक एवं शुद्धतम करवाई जा रही है। इतिहास के दोनों भागों का मूल्य समिति ने ३१) निर्धारित किया है। रु० ३१) भेज कर अग्रिम ग्राहक बनने वाले सज्जनों एवं संस्थाओं को दोनों भाग मुफ्त डाक-व्यय भेजे जावेंगे। अग्रिम ग्राहक बनने के लिये निम्न पते पर पत्र-व्यवहार करें।

मंत्री :

श्री प्राग्वाट-इतिहास प्रकाशक-समिति,

स्टे० राणी (राजस्थान)